ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, January-June 2025, Submitted in January 2025

निष्पक्ष मध्यस्थ या राजनीतिक सहयोगी? 2000-2024 तक गवर्नर के हस्तक्षेप का एक अनुभवजन्य अध्ययन

संजीदा खातून, शोधकर्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)
डॉ. पपली राम, प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

सार

भारतीय संविधान में राज्यपाल को एक निष्पक्ष संवैधानिक प्राधिकरण के रूप में माना गया है जो केंद्र और राज्य सरकारों के बीच सेतु का काम करता है। हालाँकि, 2000 से 2024 तक, राज्यपाल के हस्तक्षेप कथित पक्षपातपूर्ण आचरण के लिए जाँच के दायरे में आ गए हैं, विशेष रूप से त्रिशंकु विधानसभाओं, राष्ट्रपति शासन लागू करने और विधायी फ्लोर टेस्ट से संबंधित निर्णयों में। यह अध्ययन न्यायिक घोषणाओं और राजनीतिक केस स्टडीज़ की पृष्ठभूमि के खिलाफ राज्यपालों की संवैधानिक भूमिका की आलोचनात्मक जाँच करता है, जो तटस्थता और राजनीतिक निष्ठा के बीच तनाव को उजागर करता है। विश्लेषण 25 से अधिक राज्य-स्तरीय घटनाओं में अनुभवजन्य अंतर्दृष्टि प्रदान करता है जहाँ राज्यपाल के विवेक ने लोकतांत्रिक परिणामों को प्रभावित किया।

विशेष शब्द: राज्यपाल, मुख्यमंत्री, संवैधानिक नैतिकता, संघवाद, राजनीतिक पूर्वाग्रह, राष्ट्रपति शासन, न्यायिक समीक्षा

1. परिचय

भारत की संवैधानिक और राजनीतिक संरचना में राज्यपाल की भूमिका लंबे समय से विद्वानों की बहस और राजनीतिक विवाद का विषय रही है। राज्य के संवैधानिक प्रमुख और संघ और राज्यों के बीच एक तटस्थ सेतु के रूप में कल्पना की गई, राज्यपाल की स्थिति संसदीय लोकतंत्र और सहकारी संघवाद की भावना के भीतर कार्य करने के लिए डिज़ाइन की गई थी [1]। हालाँकि, स्वतंत्रता के बाद से भारतीय राजनीति के व्यवहार में - और विशेष रूप से उदारीकरण के युग के बाद से - इस उच्च संवैधानिक कार्यालय का राजनीतिकरण बढ़ता जा रहा है। 2000 से 2024 तक की अवधि भारतीय संघवाद में एक अशांत अध्याय को चिह्नित करती है, जिसमें राज्यपालों द्वारा त्रिशंकु विधानसभाओं, राष्ट्रपति शासन की सिफारिशों, फ्लोर टेस्ट के समय और विधायी सहमति को रोकने जैसे संदर्भों में विवेकाधीन शक्तियों के लगातार उपयोग की विशेषता है, जिससे मौलिक प्रश्न उठता है: क्या राज्यपाल सहकर्मी मध्यस्थ के रूप में कार्य कर रहे हैं, या वे केंद्र के राजनीतिक सहयोगी बन गए हैं? भारतीय संविधान के अनुच्छेद 153 से 162 के तहत राज्यपाल के कार्यालय के लिए नाममात्र रूप से संघ स्तर पर राष्ट्रपति के समान कार्यकारी शक्तियां प्रदान की गई हैं। हालांकि, यह अनुच्छेद 163 है - जो राज्यपाल को कुछ मामलों में अपने विवेक से कार्य करने की अनुमति देता है - जो कि अस्पष्ट और विवादास्पद दोनों साबित हुआ है, जिससे राजनीतिक शोषण के लिए अतिसंवेदनशील संवैधानिक ग्रे ज़ोन बन गया है [2]। हालाँकि मूल रूप से इसका उद्देश्य राष्ट्र की एकता की रक्षा करना और राज्यों में संवैधानिक शासन को बनाए रखना था, लेकिन राज्यपाल के कार्यालय का इस्तेमाल अक्सर केंद्रीय वर्चस्व के साधन के रूप में किया जाता रहा है, खासकर विपक्ष शासित राज्यों में [3]। कई आयोगों और समितियों - विशेष रूप से सरकारिया आयोग (1988) और पुंछी आयोग (2010) - ने राज्यपालों की नियुक्ति, कार्यकाल और कामकाज में सुधार की सिफारिश की है, फिर भी इन सुधारों पर राजनीतिक सहमति नहीं बन पाई है [4–6]। 2000 और 2024 के बीच, भारत ने गठबंधन सरकारों, खंडित जनादेश और मध्यावधि राजनीतिक पुनर्संरेखण में तीव्र वृद्धि देखी, जिसने राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों को सामने ला दिया। अरुणाचल प्रदेश (2016) में, कैबिनेट की सलाह के बिना विधानसभा सत्र को आगे बढ़ाने के राज्यपाल के फैसले ने एक निर्वाचित सरकार को गिरा दिया - एक ऐसा कदम जिसे बाद में संवैधानिक मानदंडों का उल्लंघन करने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने पलट दिया [7]। महाराष्ट्र राजनीतिक संकट (2019) ने संवैधानिक विवेक और राजनीतिक अवसरवाद के बीच धुंधली रेखाओं को और उजागर किया, क्योंकि राज्यपाल द्वारा अल्पमत सरकार को सुबह-सुबह शपथ दिलाए जाने से पारदर्शिता और तटस्थता पर गंभीर चिंताएँ पैदा हुईं [8-9]। इसी तरह, कर्नाटक (2018) में, राज्यपाल ने सबसे बड़ी पार्टी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया, भले ही चुनाव के बाद के गठबंधनों के पास स्पष्ट बहुमत था, जिससे तत्काल फ्लोर टेस्ट कराने के लिए न्यायिक हस्तक्षेप करना पड़ा [10]।

इन उदाहरणों ने, अन्य के अलावा, न्यायिक धारणा को पुष्ट किया है कि राज्यपाल की भूमिका संवैधानिक नैतिकता द्वारा शासित होनी चाहिए, न कि राजनीतिक सुविधावाद द्वारा। एसआर बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) में, सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) के दुरुपयोग के खिलाफ सख्त सुरक्षा उपाय निर्धारित किए और इस बात पर जोर दिया कि राज्यपाल की संतुष्टि नहीं, बल्कि फ्लोर टेस्ट से विधायी बहुमत निर्धारित होना चाहिए [11]। फिर भी, जैसा कि हाल के राजनीतिक घटनाक्रमों से पता चलता है, इन सुरक्षा उपायों का हमेशा भावना या व्यवहार में सम्मान नहीं किया गया है [12]। पिछले दो दशकों में राज्यपाल की

कार्रवाइयों का एक अनुभवजन्य विश्लेषण चिंताजनक पैटर्न को प्रकट करता है: केंद्र सरकार का विरोध करने वाले राजनीतिक दलों द्वारा शासित राज्यों में असंगत संख्या में विवादास्पद हस्तक्षेप हुए हैं। इससे पता चलता है कि राज्यपालों को दी जाने वाली विवेकाधीन जगह अक्सर संवैधानिक आवश्यकता के बजाय पक्षपातपूर्ण विचारों से प्रभावित होती है [13-14]। पारदर्शी नियुक्ति प्रक्रिया की अनुपस्थिति, निश्चित कार्यकाल की कमी और राजभवनों पर केंद्रीकृत नियंत्रण संघीय प्रणाली में एक सहकर्मी मध्यस्थ के रूप में राज्यपाल की विश्वसनीयता को और कम करता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य 2000 से 2024 तक भारतीय राज्यों में राज्यपालों के व्यवहार पैटर्न की अनुभवजन्य जांच करना है, जिसमें राजनीतिक संकटों, सरकार गठन, विधानसभा विघटन और विधायी अनुमोदन में उनकी भूमिका पर ध्यान केंद्रित किया गया है। न्यायिक निर्णयों, आधिकारिक अधिसूचनाओं, राजभवन के अभिलेखों और मीडिया जांचों से जानकारी प्राप्त करके, अध्ययन समकालीन भारत के एक महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करता है: क्या राज्यपाल का कार्यालय संविधान के निष्पक्ष संरक्षक के रूप में विकसित हुआ है, या यह केंद्र में सत्तारूढ़ व्यवस्था का केवल एक राजनीतिक चौकी है?

इस अध्ययन के निष्कर्षों का संवैधानिक सुधार, केंद्र-राज्य संबंधों और भारत में सहकारी संघवाद के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। जैसे-जैसे भारतीय लोकतंत्र परिपक्व होता है, यह सुनिश्चित करना अनिवार्य हो जाता है कि संवैधानिक कार्यालय पक्षपातपूर्ण प्रभाव से ऊपर रहें, जिससे जनता का विश्वास मजबूत हो और राष्ट्र के संघीय चरित्र को संरक्षित किया जा सके।

1.1 अध्ययन के उद्देश्य

1. राज्यपाल की भूमिका के संवैधानिक अधिदेश और न्यायिक व्याख्या की आलोचनात्मक जांच करना।
2. 2000-2024 तक राज्य की राजनीति में राज्यपाल के हस्तक्षेप का अनुभवजन्य विश्लेषण करना।
3. यह आकलन करना कि क्या राज्यपालों ने राजनीतिक संकटों के दौरान निष्पक्ष मध्यस्थ या राजनीतिक सहयोगी के रूप में काम किया।

2. संवैधानिक प्रावधान और न्यायिक व्याख्याएँ

2.1 संविधान के तहत भूमिका

भारतीय संविधान, अपने अनुच्छेद 153 से 162 में राज्यपाल के कार्यालय की संरचना, कर्तव्यों और सीमाओं को रेखांकित करता है। अनुच्छेद 153 में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होगा, जबकि अनुच्छेद 154 राज्यपाल में राज्य की कार्यकारी शक्ति निहित करता है। हालाँकि, ये शक्तियाँ प्रकृति में काफी हद तक औपचारिक हैं, जिन्हें अनुच्छेद 163 के अनुसार मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर प्रयोग किया जाना चाहिए, सिवाय उन मामलों को छोड़कर जहाँ राज्यपाल को स्पष्ट रूप से अपने विवेक से कार्य करने की अनुमति है [15]।

अनुच्छेद 163(1) यह कहकर अस्पष्टता का परिचय देता है कि राज्यपाल को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद होगी "सिवाय इसके कि उसे अपने विवेक से अपने कार्यों का प्रयोग करने की आवश्यकता हो।" यह खुला हुआ खंड कई राजनीतिक विवादों के केंद्र में रहा है, जिससे राज्यपाल के विवेकाधिकार के दायरे और सीमा की बहुत अलग-अलग व्याख्याएँ हो सकती हैं [16]। इसके अलावा, अनुच्छेद 356- जो राज्यपाल को राष्ट्रपति को रिपोर्ट करने का अधिकार देता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें राज्य की सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल सकती है- सबसे विवादास्पद प्रावधानों में से एक रहा है। राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए राज्यपाल की सिफारिश पर अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग को कई उदाहरणों में दर्ज किया गया है, जिससे व्यापक आलोचना और न्यायिक हस्तक्षेप हुआ [17]।

पंची आयोग (2010) ने इस बात पर प्रकाश डाला कि राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों का संयम से और पूरी जवाबदेही के साथ उपयोग किया जाना चाहिए। इसने इस बात पर भी जोर दिया कि राष्ट्रपति शासन लागू करने की कोई भी सिफारिश वस्तुनिष्ठ सामग्री और न्यायोचित आधार पर होनी चाहिए, न कि केवल केंद्र और राज्य के बीच राजनीतिक असहमति पर [18]। इसके अतिरिक्त, सरकारिया आयोग (1988) ने सिफारिश की थी कि राज्यपालों को गैर-राजनीतिक पृष्ठभूमि वाले प्रतिष्ठित व्यक्ति होने चाहिए और कार्यालय का उपयोग सेवानिवृत्त राजनेताओं के पुनर्वास के लिए नहीं किया जाना चाहिए। इसने जोर दिया कि सहकारी संघवाद की भावना को बनाए रखने के लिए राज्यपाल के कामकाज को केवल कानूनी नियमों से नहीं, बल्कि परंपराओं और मानक व्यवहार से संचालित किया जाना चाहिए [19]। इसलिए, जबकि संविधान राज्यपाल को महत्वपूर्ण प्रतीकात्मक और प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ सौंपता है, वास्तविक शक्ति लोकतांत्रिक सिद्धांतों और संवैधानिक नैतिकता द्वारा सीमित है। राज्यपाल के विवेक के इर्द-गिर्द विकसित हो रहा न्यायशास्त्र कानूनी पाठ, राजनीतिक व्यवहार और लोकतांत्रिक नैतिकता के बीच निरंतर तनाव को दर्शाता है [20]।

2.2 राज्यपाल के आचरण पर न्यायिक निर्णय

भारतीय संवैधानिक न्यायालयों ने राजनीतिक रूप से संवेदनशील संदर्भों में राज्यपाल की शक्तियों के उपयोग को स्पष्ट करने, सीमित

करने और कभी-कभी फटकार लगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तीन ऐतिहासिक निर्णय- एस.आर. बोम्मई (1994), रामेश्वर प्रसाद (2006), और नबाम रेबिया (2016)- राज्यपाल के आचरण पर न्यायिक व्याख्याओं की न्यायशास्त्रीय रीढ़ हैं।

एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) इस ऐतिहासिक मामले ने राज्य सरकार की वैधता निर्धारित करने में फ्लोर टेस्ट की प्रधानता स्थापित की। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि अनुच्छेद 356 का मनमाने ढंग से उपयोग नहीं किया जा सकता है और राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रपति की संतुष्टि न्यायिक समीक्षा के अधीन है [15]। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि राज्यपाल केंद्र में सत्तारूढ़ दल का एजेंट नहीं है, बल्कि संघीय संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक एक संवैधानिक पदाधिकारी है [16]। इस निर्णय में यह भी कहा गया कि बहुमत का परीक्षण सदन में ही होना चाहिए, राज्यपाल के व्यक्तिपरक आकलन के आधार पर नहीं।

रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ (2006) यह मामला 2005 में बिहार विधानसभा के समय से पहले भंग होने से उत्पन्न हुआ था। राज्यपाल ने सदन बुलाए बिना ही इसे भंग करने की संस्तुति की थी, यह तर्क देते हुए कि कोई स्थिर सरकार नहीं बनाई जा सकती। सर्वोच्च न्यायालय ने विघटन को असंवैधानिक घोषित किया और कहा कि चुनाव के बाद राजनीतिक गठबंधन को राज्यपाल द्वारा पहले से ही रद्द नहीं किया जा सकता [17]। न्यायालय ने आगे जोर दिया कि राज्यपालों को संवैधानिक मानदंडों के अनुसार कार्य करना चाहिए, और बहुमत वाली सरकारों के गठन को रोकने के साधन नहीं बनना चाहिए।

नबाम रेबिया बनाम उपसभापति (2016) अरुणाचल प्रदेश के इस महत्वपूर्ण मामले में, राज्यपाल ने मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह के बिना विधानसभा सत्र को आगे बढ़ा दिया था, जिससे राजनीतिक संकट पैदा हो गया और राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि राज्यपाल को विधानसभा को बुलाने या भंग करने में एकतरफा कार्रवाई करने का कोई अधिकार नहीं है। फैसले में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्यपाल निर्वाचित सरकार की सहायता और सलाह से बंधे हैं, सिवाय कुछ संकीर्ण रूप से परिभाषित असाधारण परिस्थितियों के [18]। फैसले ने पुष्टि की कि अनुच्छेद 163 राज्यपाल को अप्रतिबंधित विवेक नहीं देता है और कोई भी कार्रवाई जो लोकतांत्रिक सिद्धांतों का उल्लंघन करती है या चुनावी जनादेश को कमजोर करती है, उसे असंवैधानिक माना जाएगा।

3. शोध पद्धति

शोध डिजाइन: यह एक गुणात्मक-अनुभवजन्य अध्ययन है जिसमें भारतीय राज्यों में राज्यपालों के हस्तक्षेपों का केस स्टडी विश्लेषण और न्यायिक समीक्षा शामिल है।

डेटा स्रोत

- आधिकारिक राज्य राजपत्र और राजभवन विज्ञप्तियाँ
- सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के निर्णय
- संसदीय बहस और सरकारिया आयोग की रिपोर्ट
- संवैधानिक विशेषज्ञों के साथ साक्षात्कार
- 2000-2024 तक के मीडिया अभिलेखागार

केस चयन मानदंड

- त्रिशंकु विधानसभा वाले या स्पष्ट जनादेश न रखने वाले राज्य
- वे राज्य जहाँ अनुच्छेद 356 लागू किया गया
- न्यायालय द्वारा मान्य या चुनौती दी गई राज्यपाल की कार्रवाइयाँ

अध्ययन के लिए कुल 25 प्रमुख राज्यपाल हस्तक्षेपों का चयन किया गया।

4. परिणाम और चर्चा

यह खंड भारतीय राज्यों में 2000 से 2024 तक 25 चयनित राज्यपालीय हस्तक्षेपों का व्यापक अनुभवजन्य और विश्लेषणात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इन घटनाओं का संवैधानिक अनुपालन, राजनीतिक तटस्थता, न्यायिक हस्तक्षेप और सार्वजनिक धारणा के विषयगत लेंस के तहत व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया गया है। इसका उद्देश्य यह समझना है कि क्या राज्यपालों ने संवैधानिक संकट के क्षणों में संविधान के निष्पक्ष संरक्षक के रूप में काम किया या केंद्र के साथ गठबंधन करके राजनीतिक सुविधा के एजेंट के रूप में काम किया।

4.1 संवैधानिक डिजाइन बनाम परिचालन वास्तविकता

भारतीय संविधान, अनुच्छेद 153 से 162 के तहत, राज्यपाल के कार्यालय को राज्य के नाममात्र प्रमुख के रूप में

परिभाषित करता

है जो मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर काम करता है। संविधान कुछ विवेकाधीन शक्तियाँ भी प्रदान करता है, जिनका प्रयोग संयम से और संवैधानिक नैतिकता की सीमाओं के भीतर किया जाना चाहिए। हालाँकि, 25 हस्तक्षेपों का विश्लेषण इस मानक डिजाइन से एक महत्वपूर्ण प्रस्थान को इंगित करता है।

अनुभवजन्य अवलोकन:

- 25 में से 17 हस्तक्षेपों में राज्यपाल के कार्यों ने केंद्र में सत्तारूढ़ पार्टी के राजनीतिक हितों का पक्ष लिया, अक्सर:
  - o चुनाव के बाद के गठबंधनों से समर्थन के पत्रों को अनदेखा करना।
  - o सार्वजनिक स्पष्टीकरण के बिना गैर-कार्य घंटों के दौरान सरकारों को शपथ दिलाना।
  - o ऐसे परिदृश्यों में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करना जहाँ फ्लोर टेस्ट से अस्पष्टता का समाधान हो सकता था।
- रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ (2006) और नबाम रेबिया बनाम उपसभापति (2016) जैसे ऐतिहासिक मामलों में न्यायिक टिप्पणियों ने कई राज्यपालीय कार्यों को अधिकारहीन और लोकतांत्रिक मानदंडों के उल्लंघन के रूप में वर्गीकृत किया।

सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि: संघवाद के संवैधानिक दर्शन और राज्यपालीय शक्ति के वास्तविक उपयोग के बीच एक महत्वपूर्ण वियोग मौजूद है। संहिताबद्ध जवाबदेही तंत्र की कमी ने राज्यपाल के विवेकाधीन स्थान का राजनीतिक रूप से शोषण करने की अनुमति दी है, जिससे सहकारी संघवाद की भावना खत्म हो रही है। सरकारिया (1988) और पुंछी (2010) आयोगों ने इस प्रवृत्ति के खिलाफ चेतावनी दी थी और प्रणालीगत सुधारों की सिफारिश की थी, जिनमें से अधिकांश अभी तक लागू नहीं हुए हैं।

मुख्य अंतर्दृष्टि: संविधान के पाठ और उसके व्याख्यात्मक निष्पादन के बीच "संवैधानिक शून्यता" ने राजभवन के निरंतर राजनीतिकरण को सक्षम किया है। राज्यपाल, संवैधानिक निरंतरता के एजेंट होने के बजाय, कई मामलों में कार्यकारी अवसरवाद का एक उपकरण बन गए हैं।

4.2 केस के प्रकार और प्रवृत्तियों का विभाजन

यह खंड 25 राज्यपालीय हस्तक्षेपों को तीन प्राथमिक संकट प्रकारों में वर्गीकृत करता है और प्रत्येक से उभरे पैटर्न, कानूनी व्याख्याओं और संवैधानिक निहितार्थों की जांच करता है। यह बताता है कि राज्यपालों के निर्णय, विशेष रूप से राजनीतिक रूप से अस्थिर वातावरण में, अक्सर संवैधानिक अपेक्षाओं और स्थापित मानदंडों से अलग होते हैं।

A. त्रिशंकु विधानसभाएं और सरकार बनाने के लिए विवादास्पद निमंत्रण

संदर्भ और प्रासंगिकता

त्रिशंकु विधानसभाएं - जहां किसी भी एक पार्टी को पूर्ण बहुमत नहीं मिलता है - राज्यपाल जैसे संवैधानिक पदाधिकारियों के लिए महत्वपूर्ण क्षण होते हैं। ऐसे परिदृश्यों में, राज्यपाल को सदन के पटल पर बहुमत के समर्थन का आकलन करके स्थिर सरकार के गठन को सुगम बनाने का काम सौंपा जाता है, न कि व्यक्तिपरक वरीयता के माध्यम से। यह कार्य न्यायिक मिसालों (विशेष रूप से एसआर बोम्मई निर्णय) और सरकारिया आयोग की सिफारिशों द्वारा निर्देशित होता है, जो यह अनिवार्य करता है कि राज्यपाल को सरकार बनाने के लिए किसी पार्टी को आमंत्रित करने से पहले सभी संवैधानिक रूप से व्यवहार्य संयोजनों का पता लगाना चाहिए।

अनुभवजन्य निष्कर्ष

अध्ययन किए गए 25 राज्यपाल संकटों में से 11 त्रिशंकु विधानसभा के मामले थे। इनमें से 7 में, राज्यपाल ने स्पष्ट चुनाव-पश्चात गठबंधनों को दरकिनार कर दिया, जिन्होंने बहुमत के समर्थन के पत्र प्रस्तुत किए थे, और इसके बजाय सबसे बड़ी पार्टी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया - भले ही उस पार्टी के पास संख्या नहीं थी।

इस तरह के निर्णयों ने निम्नलिखित के बारे में गंभीर चिंताएँ पैदा की हैं:

- **निमंत्रण के पीछे तर्क की पारदर्शिता।**
- **केंद्रीय सत्तारूढ़ पार्टी के पक्ष में राजनीतिक पूर्वाग्रह।**
- **बहुमत का समर्थन निर्धारित करने के लिए विधायी फ़्लोर टेस्ट से बचना।**

मुख्य मामले के उदाहरण और विश्लेषण

1. कर्नाटक (2018)

- **चुनाव परिणाम: भाजपा (104), कांग्रेस (78), जेडी(एस) (37) – कुल 224 सीटें**
- **राज्यपाल की कार्रवाई: राज्यपाल वजुभाई वाला ने कांग्रेस-जेडी(एस) के चुनाव-पश्चात गठबंधन (कुल 115, दावा**

पत्र प्रस्तुत किए गए) को नज़रअंदाज़ करते हुए भाजपा को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया।

- कानूनी परिणाम: सर्वोच्च न्यायालय ने 24 घंटे के भीतर हस्तक्षेप किया, अनिवार्य फ्लोर टेस्ट का आदेश दिया, जिससे राज्यपाल के निर्णय की प्रभावी रूप से जाँच हुई।
- संवैधानिक चिंता: राज्यपाल का यह औचित्य कि भाजपा सबसे बड़ी पार्टी थी-कानूनी रूप से कमज़ोर था, क्योंकि संविधान सदन में बहुमत को प्राथमिकता देता है, न कि चुनाव-पूर्व आकार को।
- राजनीतिक व्याख्या: विश्लेषकों और संपादकीय बोर्डों (द हिंदू, इंडियन एक्सप्रेस) द्वारा इस कदम की व्याख्या हॉर्स-ट्रेडिंग के लिए समय देने के प्रयास के रूप में की गई।

2. गोवा (2017)

- चुनाव परिणाम: 40 सीटों में से कांग्रेस (17), भाजपा (13)
- राज्यपाल की कार्रवाई: राज्यपाल मृदुला सिन्हा ने कांग्रेस के सबसे बड़ी पार्टी होने के बावजूद "स्थिर सरकार प्रदान करने की क्षमता" का हवाला देते हुए भाजपा को आमंत्रित किया।
- औचित्य: भाजपा ने छोटे दलों और निर्दलीयों से समर्थन पत्र प्रस्तुत किए।
- सार्वजनिक और मीडिया आलोचना: यद्यपि तकनीकी रूप से विवेक के भीतर, आमंत्रण की गति (24 घंटे के भीतर) और कांग्रेस को आमंत्रित करने में देरी, इसके बावजूद कि वह सबसे बड़ी पार्टी थी, पक्षपातपूर्ण मानी गई।
- संवैधानिक जटिलता: गोवा का उदाहरण विवेक और पक्षपात के बीच की पतली रेखा को दर्शाता है जब गति और गोपनीयता समावेशी परामर्श को खत्म कर देती है।

3. महाराष्ट्र (2019)

- चुनाव परिणाम: भाजपा (105), शिवसेना (56), एनसीपी (54), कांग्रेस (44)
- राज्यपाल की कार्रवाई: शिवसेना और भाजपा के बीच वार्ता विफल होने के बाद, शिवसेना-एनसीपी-कांग्रेस (162 विधायक) के बीच चुनाव-पश्चात गठबंधन ने बहुमत का दावा किया।
- इसके बजाय, राज्यपाल भगत सिंह कोश्यारी ने राष्ट्रपति शासन की सिफारिश की, जिसे रात में अचानक हटा दिया गया और भाजपा के देवेंद्र फडणवीस और एनसीपी के अजीत पवार को भोर में शपथ दिलाई गई।
- सुप्रीम कोर्ट की प्रतिक्रिया: 24 घंटे के भीतर फ्लोर टेस्ट का आदेश दिया, जिसे फडणवीस ने खो दिया और गठबंधन ने सरकार बनाई।
- व्याख्या: नागरिक समाज द्वारा "संवैधानिक हेरफेर" के रूप में वर्णित, इस घटना ने राजभवन के उपयोग को केंद्र द्वारा निर्देशित राजनीतिक योजना को निष्पादित करने का उदाहरण दिया।

पैटर्न और संवैधानिक निहितार्थ

विश्लेषित केस स्टडीज़ - जैसे कि कर्नाटक (2018), गोवा (2017), महाराष्ट्र (2019), साथ ही मेघालय (2018), मणिपुर (2017), और झारखंड (2005) सहित अन्य - स्पष्ट रूप से एक आवर्ती और परेशान करने वाला पैटर्न प्रदर्शित करते हैं: राज्यपाल अक्सर केंद्र में सत्तारूढ़ पार्टी के साथ गठबंधन करने वाली पार्टियों का पक्ष लेते हैं, तब भी जब इन पार्टियों के पास विधायी बहुमत नहीं होता। सबसे आम संवैधानिक उल्लंघनों में से एक चुनाव के बाद के गठबंधनों की व्यवस्थित अनदेखी थी, जिन्होंने पहले से ही बहुमत के समर्थन के पत्र हासिल कर लिए थे। यह सरकारिया आयोग द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों का उल्लंघन करता है, जो त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में सरकार गठन के लिए वरीयता का एक विशिष्ट क्रम निर्धारित करता है - चुनाव से पहले के गठबंधन से शुरू होकर बहुमत हासिल करने वाला, उसके बाद सबसे बड़ी पार्टी द्वारा दूसरों के समर्थन से दावा करने वाला, और अंत में चुनाव के बाद का गठबंधन। इन मानदंडों की अनदेखी सामूहिक विधायी इच्छा के सिद्धांत को कमजोर करती है। एक और बार-बार होने वाला उल्लंघन फ्लोर टेस्ट को जानबूझकर टालना या देरी करना था, जिससे संसदीय प्रक्रिया कमज़ोर हो गई। सुप्रीम कोर्ट ने लगातार, खास तौर पर ऐतिहासिक एसआर बोम्मई और रामेश्वर प्रसाद के फ़ैसलों में, यह फैसला सुनाया है कि बहुमत सदन में साबित होना चाहिए, न कि राज्यपालों द्वारा पत्रों या व्यक्तिपरक आकलन के ज़रिए। इसके बावजूद, कई मामलों में राज्यपालों ने समय पर फ्लोर टेस्ट की अनुमति दिए बिना सरकारों को शपथ ग्रहण की अनुमति दी, जिससे राजनीतिक हेरफेर का संदेह पैदा हुआ। इसके अलावा, 2019 में महाराष्ट्र में सुबह-सुबह शपथ ग्रहण जैसे अजीब या गुप्त समय पर शपथ दिलाने

की प्रथा प्रक्रियागत अस्पष्टता और संभावित राजनीतिक मिलीभगत का संकेत देती है। इस तरह की प्रथाएँ जनता के भरोसे को कम करती हैं और पारदर्शिता और लोकतांत्रिक जवाबदेही के सिद्धांतों का उल्लंघन करती हैं। सिद्ध विधायी शक्ति वाले दलों या गठबंधनों को निमंत्रण देने में देरी या सीधे इनकार करना भी समान रूप से समस्याग्रस्त था। कई मामलों में, राज्यपालों ने या तो बहुमत वाले गठबंधनों के नेताओं से मिलने से इनकार कर दिया या बिना वैध स्पष्टीकरण के उनके दावों को खारिज कर दिया। यह लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व से इनकार करने का गठन करता है, जो लोगों की चुनी हुई इच्छा को प्रभावी रूप से वंचित करता है। कुल मिलाकर, ये पैटर्न राजनीतिक सुविधा के पक्ष में संवैधानिक मानदंडों से निरंतर विचलन को दर्शाते हैं।

न्यायिक टिप्पणी और कानूनी मार्गदर्शन

भारतीय न्यायपालिका ने बार-बार ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से संवैधानिक व्यवस्था को लागू करने का प्रयास किया है, फिर भी राज्यपाल के विवेक का दुरुपयोग सामने आता रहता है। रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ (2006) में, सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार विधानसभा के समय से पहले विघटन को असंवैधानिक घोषित किया, इस बात पर जोर देते हुए कि राज्यपाल के पास राजनीतिक स्थिरता का व्यक्तिपरक मूल्यांकन करने का कोई अधिकार नहीं है। निर्णय ने पुष्टि की कि बहुमत का परीक्षण सदन के पटल पर किया जाना चाहिए, न कि राजभवन से। इसी तरह, मौलिक एसआर बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) मामले में, न्यायालय ने निर्धारित किया कि बहुमत का निर्धारण करने के लिए फ्लोर टेस्ट ही एकमात्र वैध तरीका है, खासकर ऐसे परिदृश्यों में जहां विधायी समर्थन को चुनौती दी जाती है। ये निर्णय राज्यपाल के आचरण के इर्द-गिर्द संवैधानिक व्याख्या की आधारशिला बन गए हैं। हालांकि, अनुच्छेद 163 के तहत विवेकाधीन कार्रवाइयों की लगातार गैर-न्यायसंगतता, जब तक कि उन्हें अदालत में चुनौती न दी जाए, उनके दुरुपयोग की गुंजाइश देती है। चूंकि इन शक्तियों का प्रयोग अक्सर तेजी से विकसित होने वाले राजनीतिक संकटों के दौरान किया जाता है, इसलिए न्यायिक निवारण केवल तब होता है जब नुकसान हो चुका होता है, जिसके लिए प्रतिक्रियात्मक कानूनी हस्तक्षेपों के बजाय सक्रिय संरचनात्मक सुधारों की आवश्यकता होती है।

B. अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) का उपयोग और दुरुपयोग

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू करना, संवैधानिक तंत्र की सुरक्षा के लिए अंतिम उपाय के रूप में, 2000 और 2024 के बीच छह प्रमुख उदाहरणों में देखा गया था। हालाँकि, इन मामलों की बारीकी से जाँच करने पर राजनीतिक दुरुपयोग की एक परेशान करने वाली प्रवृत्ति का पता चलता है। छह में से चार मामलों में, अनुच्छेद 356 के आह्वान को या तो न्यायपालिका द्वारा खारिज कर दिया गया या संवैधानिक विशेषज्ञों और आयोगों द्वारा वस्तुनिष्ठ संवैधानिक आधारों की कमी के लिए इसकी कड़ी आलोचना की गई। वास्तविक प्रशासनिक विफलताओं का जवाब देने के बजाय, ये घोषणाएँ विपक्ष के नेतृत्व वाली राज्य सरकारों को अस्थिर करने या बर्खास्त करने के लिए राजनीतिक रूप से प्रेरित प्रयास प्रतीत हुई।

इसका एक प्रमुख उदाहरण 2016 का अरुणाचल प्रदेश संकट है, जहाँ राज्यपाल जे.पी. राजखोवा ने मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना एकतरफा विधानसभा सत्र को आगे बढ़ा दिया - एक ऐसा कदम जो संवैधानिक रूप से अस्थिर था। इस कदम ने राष्ट्रपति शासन लागू करने में तेज़ी ला दी, जिससे निर्वाचित सरकार प्रभावी रूप से निलंबित हो गई। नबाम रेबिया बनाम डिप्टी स्पीकर मामले में सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक फैसले में कोर्ट ने राज्यपाल के आचरण को असंवैधानिक करार देते हुए कहा कि यह "लोकतांत्रिक सिद्धांतों का अपमान" और अधिकार का स्पष्ट अतिक्रमण है। कोर्ट ने बर्खास्त सरकार को बहाल करने का आदेश दिया, जिससे एक मजबूत न्यायिक मिसाल कायम हुई।

इन घटनाओं से प्राप्त कानूनी अंतर्दृष्टि स्पष्ट है: अनुच्छेद 356 का उपयोग अत्यधिक सावधानी के साथ किया जाना चाहिए, केवल वास्तविक संवैधानिक पतन के मामलों में, और कभी भी पक्षपातपूर्ण हेरफेर या कार्यकारी सुविधा के उपकरण के रूप में नहीं। इसका अंधाधुंध उपयोग भारतीय राजनीति के संघीय चरित्र को कमजोर करता है, राज्यों की स्वायत्तता को कमजोर करता है, और केंद्र-राज्य संबंधों को आधार देने वाले विश्वास को खत्म करता है। संवैधानिक सुरक्षा उपायों और न्यायिक जांच के बावजूद, इस अनुच्छेद का लगातार दुरुपयोग लागू करने योग्य सीमाओं और इसके प्रक्रियात्मक ट्रिगर्स के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता को दर्शाता है।

C. संकट की स्थिति में विवेकाधीन शक्तियाँ

राष्ट्रपति शासन लागू करने जैसी प्रत्यक्ष कार्रवाइयों के अलावा, राज्यपालों ने अक्सर संकट की स्थिति में अपनी असंहिताबद्ध विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग किया है, अक्सर राजनीतिक अनिश्चितता या विधायी गतिरोध की परिस्थितियों में। ये शक्तियाँ, यद्यपि अनुच्छेद 163 के अंतर्गत निहित हैं, लेकिन इनका उपयोग संवैधानिक नैतिकता और न्यायिक मिसालों द्वारा निर्देशित संयमित और निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए। हालाँकि, अनुभवजन्य विश्लेषण से पता चलता है कि राज्यपालों ने इन शक्तियों का उपयोग

फ्लोर टेस्ट में देरी करने, विशेष सत्र बुलाने से इनकार करने या शपथ ग्रहण समारोहों के समय में हेरफेर करने के लिए किया है - ऐसी कार्रवाइयाँ जो उनके इरादे और संवैधानिक वैधता के बारे में गंभीर चिंताएँ पैदा करती हैं।

2019 में महाराष्ट्र में एक विशेष रूप से उल्लेखनीय उदाहरण हुआ, जहाँ राज्यपाल भगत सिंह कोश्यारी ने बिना किसी सार्वजनिक सूचना या पारदर्शिता के सुबह 7:00 बजे के आसपास देवेंद्र फडणवीस और अजीत पवार को पद की शपथ दिलाई। यह शपथ ग्रहण अत्यधिक गोपनीय परिस्थितियों में हुआ, जिसमें विरोधी गठबंधन को अपना दावा पेश करने का कोई पूर्व घोषणा या अवसर नहीं दिया गया। 72 घंटों के भीतर ही सरकार बहुमत हासिल करने में विफल होकर गिर गई। सर्वोच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य होना पड़ा, और अनिवार्य फ्लोर टेस्ट का आदेश दिया, जिससे प्रक्रियागत पवित्रता बहाल हुई और बहुमत का समर्थन निर्धारित करने में विधायिका की भूमिका की पुष्टि हुई।

ऐसे विवेकाधीन हस्तक्षेप, सतह पर संवैधानिक रूप से वैध प्रतीत होते हुए भी, अक्सर महत्वपूर्ण नकारात्मक निहितार्थ रखते हैं। वे राज्यपाल के कार्यालय में जनता के विश्वास को खत्म करते हैं, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में अपेक्षित पारदर्शिता को कम करते हैं, और राजभवन से जुड़ी तटस्थता की धारणा से समझौता करते हैं। इसके अलावा, वे अक्सर संवैधानिक भ्रम पैदा करते हैं, जिससे कार्यकारी कार्यों को स्पष्ट करने या उलटने के लिए न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। ये प्रकरण राज्यपाल के विवेक की सीमाओं को संहिताबद्ध करने और भविष्य में दुरुपयोग को रोकने के लिए ऐसे कार्यों को समय पर न्यायिक या संसदीय जांच के अधीन करने की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

4.3 संवैधानिक सुधारक के रूप में न्यायपालिका की भूमिका

25 हस्तक्षेपों में से:

- **8 हस्तक्षेपों को अदालतों में चुनौती दी गई**
- **5 प्रमुख निर्णयों में, सर्वोच्च न्यायालय ने या तो राज्यपाल के निर्णय को पलट दिया या भविष्य के आचरण के लिए दिशा-निर्देश निर्धारित किए।**

मामला	राज्य	वर्ष	सर्वोच्च न्यायालय का फैसला	परिणाम
रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ	बिहार	2005	विधानसभा को भंग करना असंवैधानिक माना	विधानसभा चुनाव का आदेश दिया गया
नबाम रेबिया बनाम उपसभापति	अरुणाचल प्रदेश	2016	राज्यपाल ने संवैधानिक शक्तियों से परे जाकर काम किया	राष्ट्रपति शासन हटा दिया गया
एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ	कई राज्य (संदर्भ मामला)	1994	अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग पर ऐतिहासिक दिशा-निर्देश जारी किए	बाद के संवैधानिक मामलों में दिशा-निर्देश लागू किए गए
शिवसेना बनाम भारत संघ	महाराष्ट्र	2019	निर्देश दिया कि 24 घंटे के भीतर फ्लोर टेस्ट कराया जाए	फ्लोर टेस्ट के बाद सरकार में बदलाव

न्यायिक अंतर्दृष्टि: न्यायालयों ने संवैधानिक नैतिकता के संरक्षक के रूप में कार्य करना शुरू कर दिया है, तथा राज्यपाल के कार्यालय के राजनीतिक दुरुपयोग को रोका है।

4.4 राजनीतिक नियुक्तियाँ और पक्षपातपूर्ण आचरण

राजभवन नियुक्तियों की अनुभवजन्य समीक्षा से पता चलता है:

- **2000 से 2024 के बीच लगभग 70% राज्यपाल पूर्व नौकरशाह, सेवानिवृत्त न्यायाधीश या सत्तारूढ़ राष्ट्रीय पार्टी से पूर्व संबद्धता वाले राजनेता थे।**
- **2014 के बाद, राज्यपालों के लगातार तबादलों के साथ केंद्रीकरण की प्रवृत्ति तेज हो गई, अक्सर बिना किसी स्पष्टीकरण के, सरकारिया आयोग (5-वर्ष का कार्यकाल) की कार्यकाल संबंधी सिफारिशों का उल्लंघन करते हुए।**

विशेषज्ञ साक्षात्कार अंश:

एक सेवानिवृत्त चुनाव आयुक्त ने कहा, "नियुक्तियाँ संवैधानिक योग्यता के लिए चयन के बजाय राजनीतिक निष्ठा के लिए पुरस्कार बन गई हैं।"

4.5 मीडिया और सार्वजनिक चर्चा विश्लेषण (2000-2024)

राज्यपाल के हस्तक्षेप की अवधि के दौरान संपादकीय, ऑप-एड और टेलीविज़न पर बहस के विश्लेषण से राज्यपाल के

कार्यालय में जनता के विश्वास में उल्लेखनीय कमी का पता चलता है:

• द हिंदू (2016): अरुणाचल संकट को "राज्य की स्वायत्तता को स्पष्ट रूप से कमज़ोर करना" कहा गया।

• इंडियन एक्सप्रेस (2019): महाराष्ट्र में शपथ ग्रहण समारोह को "लोकतंत्र के साथ विश्वासघात" बताया गया।

• NDTV और स्क्रॉल.इन के संपादकीय नियमित रूप से राज्यपाल के निर्णयों की अस्पष्टता पर सवाल उठाते रहे।

सार्वजनिक धारणा विषय:

- **राजभवन एक राजनीतिक चौकी के रूप में**
- **निर्णय लेने में पारदर्शिता की कमी**
- **एक स्वतंत्र राज्यपाल चयन पैनल की मांग**

4.6 गवर्नर के आचरण का वर्गीकरण (अनुभवजन्य मैट्रिक्स)

तीन-बिंदु मूल्यांकन के आधार पर - संवैधानिक निष्ठा, न्यायिक मान्यता और राजनीतिक तटस्थता - हस्तक्षेपों को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया:

श्रेणी	मामलों की संख्या	प्रतिशत
स्पष्ट रूप से निष्पक्ष मध्यस्थ	8	32%
राजनीतिक रूप से संरेखित आचरण	15	60%
अस्पष्ट/मिश्रित संकेत	2	8%

यह वर्गीकरण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अधिकांश (60%) हस्तक्षेपों में राजनीतिक पूर्वाग्रह प्रदर्शित हुआ, जो प्रायः लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के लिए हानिकारक था।

4.7 क्षेत्रीय पैटर्न और राज्यवार विभाजन

भारतीय राज्यों में राज्यपाल के हस्तक्षेप का पैटर्न एक समान नहीं रहा है, जो महत्वपूर्ण क्षेत्रीय असमानताओं को दर्शाता है। कुछ राज्यों- जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक, गोवा, अरुणाचल प्रदेश और बिहार- ने राज्यपाल की भूमिका को लेकर बार-बार संवैधानिक घर्षण का अनुभव किया है। ये हस्तक्षेप अक्सर राजनीतिक अनिश्चितता के समय में किए जाते थे, खासकर गठबंधन सरकारों या त्रिशंकु विधानसभाओं में, जहाँ राज्यपाल का विवेक एक निर्णायक कारक बन जाता था। इसके विपरीत, तमिलनाडु, केरल और ओडिशा जैसे राज्यों में तुलनात्मक रूप से कम संवैधानिक संकट देखे गए हैं। यह सापेक्ष स्थिरता या तो मजबूत एकल-पक्षीय जनादेश या निर्णायक क्षेत्रीय नेतृत्व की उपस्थिति के कारण है जो राज्यपाल के विवेक पर निर्भरता को कम करता है। यदि हीटमैप-शैली के चार्ट के माध्यम से देखा जाए, तो अस्थिर गठबंधनों से ग्रस्त राज्यों में हस्तक्षेप की उच्च आवृत्ति देखी जाएगी, जबकि एक ही राजनीतिक दल के प्रभुत्व वाले राज्यों में हस्तक्षेप न्यूनतम रहता है।

4.8 संवैधानिक सुधार के निहितार्थ

राज्य स्तरीय केस स्टडीज़ से मिले साक्ष्य भारत में राज्यपालों की भूमिका के बारे में संवैधानिक और संस्थागत सुधार की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। एक प्रमुख अनुशंसा राज्यपालों की नियुक्ति में कॉलेजियम प्रणाली के लिए पुंछी आयोग के प्रस्ताव को लागू करना है। इससे पारदर्शिता सुनिश्चित होगी और मनमाने या राजनीतिक रूप से प्रेरित नियुक्तियों में कमी आएगी। इसके अलावा, राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों को विनियमित करने के लिए न्यायोचित दिशा-निर्देशों की शुरूआत की तत्काल आवश्यकता है। वर्तमान में, इन शक्तियों के बारे में अस्पष्टता के कारण असंगत और अक्सर विवादास्पद निर्णय लिए गए हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण सुधार राज्यपाल की कार्रवाइयों जैसे कि सरकार बनाने के लिए पार्टियों को आमंत्रित करना, राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करना या फ्लोर टेस्ट में देरी करना, के पीछे के कारणों को अनिवार्य रूप से रिकॉर्ड करना और प्रकाशित करना होगा। ऐसी पारदर्शिता मनमाने अधिकार पर अंकुश लगाने और यदि आवश्यक हो तो न्यायिक समीक्षा के लिए एक उपकरण के रूप में काम करेगी।

6. सिफारिशें

- पारदर्शी नियुक्ति प्रक्रिया: राज्यपाल की नियुक्तियों के लिए राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मुख्य न्यायाधीश को शामिल करते हुए एक कॉलेजियम की स्थापना करें।
- निश्चित कार्यकाल संरक्षण: स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए मनमाने तरीके से हटाए जाने से बचें।
- अनिवार्य फ्लोर टेस्ट: चुनाव आयोग या न्यायपालिका द्वारा समयबद्ध फ्लोर टेस्ट अनिवार्य किया जाना चाहिए।
- संसदीय निगरानी: अनुच्छेद 356 के तहत राज्यपाल की रिपोर्ट संसद में पेश की जानी चाहिए और उस पर बहस होनी चाहिए।

- आचार संहिता: राज्यपालों के कार्यों का मार्गदर्शन संवैधानिक आचार संहिता द्वारा किया जाना चाहिए।

7. निष्कर्ष

भारत के संघीय ढांचे में राज्यपाल का पद, जो संविधान के अनुसार एक निष्पक्ष मध्यस्थ और राज्यों में संवैधानिक शासन का संरक्षक होना चाहिए, व्यवहार में अनेक बार राजनीतिक विवादों का केंद्र बन गया है। 2000 से 2024 तक का कालखंड इस प्रवृत्ति का विशेष साक्षी रहा है, जहाँ विभिन्न राज्यों में राज्यपालों की विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग बार-बार संवैधानिक मर्यादाओं की सीमाओं को पार करता दिखा। विश्लेषित 25 मामलों में से अधिकांश में यह देखा गया कि राज्यपालों के निर्णय केंद्र सरकार की राजनीतिक इच्छाओं से प्रभावित रहे, जिससे निष्पक्षता, पारदर्शिता और सहकारी संघवाद की भावना को ठेस पहुँची। यह स्थिति न केवल राजभवन की विश्वसनीयता को प्रभावित करती है, बल्कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में आमजन के विश्वास को भी कम करती है। एस.आर. बोम्मई, रामेश्वर प्रसाद और नबाम रेबिया जैसे ऐतिहासिक फैसलों के बावजूद यह स्पष्ट है कि न्यायिक मार्गदर्शन की अनुपालना सुनिश्चित करने के लिए एक मजबूत संस्थागत ढाँचे की आवश्यकता है। राज्यपालों की नियुक्तियों में पारदर्शिता, उनके कार्यकाल की सुरक्षा, विवेकाधीन शक्तियों के सीमांकन और विधायी बहुमत के परीक्षण में पारदर्शिता जैसे उपाय अब समय की माँग बन चुके हैं। यदि भारतीय लोकतंत्र को उसकी पूरी संवैधानिक गरिमा के साथ आगे बढ़ाना है, तो यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि राज्यपाल का कार्यालय किसी भी राजनीतिक दल का उपकरण नहीं, बल्कि संविधान का एक निष्ठावान रक्षक बना रहे। इस शोध का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अब समय आ गया है कि संविधान की मूल भावना—निष्पक्षता, संघवाद और लोकतंत्र—को पुनः स्थापित करने हेतु राज्यपाल की भूमिका में आवश्यक संवैधानिक सुधार और जवाबदेही की प्रणाली लागू की जाए। ऐसा करना केवल संवैधानिक आवश्यकता नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक स्थायित्व और संघीय भारत के भविष्य की रक्षा के लिए अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] ऑस्टिन, जी. (2003). भारतीय संविधान: राष्ट्र की आधारशिला। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
[2] बसु, डी.डी. (2021)। भारत के संविधान पर टिप्पणी। लेक्सिसनेक्सिस।
[3] सिंह, एम.पी. (2020)। "राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियाँ: एक संवैधानिक दुविधा।" इंडियन जर्नल ऑफ़ पब्लिक लॉ, 15(2)।
[4] सरकारिया आयोग की रिपोर्ट (1988)। केंद्र-राज्य संबंध। भारत सरकार।
[5] पुंछी आयोग की रिपोर्ट (2010)। केंद्र-राज्य संबंधों पर रिपोर्ट। भारत सरकार।
[6] राव, वी. (2021)। "राजभवन एक राजनीतिक क्षेत्र के रूप में: राज्यपाल के पक्षपात का एक अध्ययन।" ईपीडब्ल्यू, 56(29)।
[7] नबाम रेबिया बनाम उपसभापति, (2016) 8 एससीसी 1।
[8] द हिंदू (2019)। "महाराष्ट्र संकट: राज्यपाल का विवेकाधिकार जांच के दायरे में।"
[9] भारत का सर्वोच्च न्यायालय। (2020)। शिवसेना बनाम भारत संघ।
[10] भारत का सर्वोच्च न्यायालय। (2018)। कर्नाटक फ्लोर टेस्ट केस।
[11] एसआर बोम्मई बनाम भारत संघ, एआईआर 1994 एससी 1918।
[12] त्रिपाठी, आर. (2020)। "फ्लोर टेस्ट की भ्रांति: संवैधानिक मिसालों पर पुनर्विचार।" जर्नल ऑफ इंडियन कॉन्स्टीट्यूशनल स्टडीज।
[13] भूषण, पी. (2021)। "राजभवनों के माध्यम से संघवाद को खत्म करना।" ईपीडब्ल्यू, 56(40)।
[14] कानून और न्याय मंत्रालय (2022)। राज्यपालों की विवेकाधीन शक्तियों पर पुस्तिका। भारत सरकार।
[15] एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ, एआईआर 1994 एससी 1918।
[16] साठे, एस.पी. (2002)। भारत में न्यायिक सक्रियता: सीमाओं का उल्लंघन और सीमाओं को लागू करना। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
[17] रामेश्वर प्रसाद और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (2006) 2 एससीसी 1।
[18] नबाम रेबिया और बामंग फेलिक्स बनाम अरुणाचल प्रदेश विधान सभा के उपाध्यक्ष, (2016) 8 एससीसी 1।